International Journal of Applied Research 2016; 2(1): 377-381

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 377-381
www.allresearchjournal.com
Received: 27-11-2015
Accepted: 30-12-2015

डॉ. वन्दना तिवारी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय,
बिलासपुर–495009 (छ.ग.)

Correspondence
डॉ. वन्दना तिवारी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय,
बिलासपुर–495009 (छ.ग.)

संजीव की रचनात्मक कहानियों में भाषा–शिल्प

डॉ. वन्दना तिवारी

अभिव्यक्ति का कोई एक निश्चित स्वरुप कभी भी सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं रहा है। देश, काल, वातावरण और पात्र में परिवर्तन होने पर अभिव्यक्ति के रुप में भी परिवर्तन होता रहता है। यही कारण है कि साहित्य का स्वरुप कभी भी स्थायी नहीं रहा है और न ही उसकी पद्धति कभी स्थिर रही है। साहित्य का यथार्थ जीवन की वास्तविकता पर आधारित रहा है और यह वास्तविकता एकांगी नहीं होती है। यह स्थिर भी नहीं रहती है, बल्कि जीवन के साथ बदलती रहती है। इसलिए जीवन–दृष्टि में परिवर्तन होने के तद्नुरुप कहानी और उपन्यास ही नहीं बल्कि साहित्य की किसी भी विधा में परिवर्तन होना अनिवार्य है, क्योंकि साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे के मुखापेक्षी हैं। यह परिवर्तन नवीनता का द्योतक होता है, क्योंकि प्रकृति का यह विधान है, कि "पुरातनता का विध्वंश और नवीनता का स्वीकार्य।" सातवाँ, आठवाँ, नवाँ दशक कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास की विकास, यात्रा में ऐसी कालावधियाँ है, जो अपने पूर्ववर्ती दशकों से पर्याप्त भिन्नता और विशिष्टता लिए हुए है। इन दशकों के रचनात्मक साहित्य में शिल्प–रचना और भाषा–शैली की दृष्टि से अनेक नवीनताएँ मौजूद है।

शिल्प वह पद्धति है, जिसकी सहायता से कहानीकार अपने कथ्य को संप्रेषणीय बनाता है। साहित्यकार अपने जिये हुए जीवन के अनुभवों को अर्थात् यथार्थ को कल्पना के साथ जोड़कर कहानियों, उपन्यासों, कविताओं, नाटकों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस अभिव्यक्ति के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के उपकरणों का सहारा लेता है, जो कहानी, उपन्यास, कविता और नाटक के तत्व कहलाते हैं। ये तत्व समादृत होकर एक नया रुप अख्तियार कर लेते हैं। यह रुप, कहानी, नाटक, कविता और उपन्यास का शिल्प कहा जाता है। इस प्रकार शिल्प वह माध्यम है, जो लेखक की यथार्थ अनुभूति को रचनात्मक आधार प्रदान कर एक कलात्मक मोड़ देता है।"

परम्परा के अनुसार, कहानी और उपन्यास के छः तत्व – कथानक, कथोपकथन, पात्र, तथा चरित्र–चित्रण, देशकाल, भाषा–शैली और उद्देश्य हैं। इन छः तत्वों को कहानी अथवा उपन्यास के लिए आवश्यक माना जाता था, परन्तु आज कहानी और उपन्यास अपनी कथा–यात्रा तय करते हुए जहाँ पहुँची है। वहाँ कहानी और, उपन्यास में घटनाओं का महत्व न होकर कथ्य का महत्व बढ़ा है। कहीं–कहीं बौद्धिकता का आग्रह होने से कहानी और उपन्यास में "कहानीपन" का ह्रास हुआ है। वस्तुतः कथ्य ही कहानी के "कहानीपन" को सुरक्षित रखता है। शिल्प की सार्थकता इसी "कहानीपन" को उभारने में है।

कहानी/उपन्यास शिल्प की यह नवीनता है कि घटनाओं, आश्चर्यजनक स्थितियों आदि के बिना भी कथानक को सुरक्षित रखा गया हे। इससे कहानी उपन्यास में "कथानकहीनता" भले ही आयी हो, किन्तु "कथाहीनता" की स्थिति नहीं है। नयी कहानी के दौर में जहाँ बिम्बों, प्रतीकों, सांकेतिकता, अमूर्त का प्रयोग आदि पर विशेष बल दिया गया था, वहीं इस दशक की कहानी में सपांटबयानी, सरल–सहज शैली का विकास हुआ है। आज कहानी/उपन्यास का अंत निष्कर्षात्मक नहीं होता। वह जिस समस्या को लेकर चलती है, उसी पर समाप्त भी हो जाती है। समस्या का निदान पाठक पर होता है। पूरी कहानी पढ़ने के बाद पाठक अपने मन में एक अस्पष्ट गूँज महसूस करता है।

भाषा क सौष्ठव संभार के लिए इधर जिन कहानीकारों ने काफी काम किया है, उसमें संजीव की एक अपनी विशिष्ट पहचान है। उनकी भाषा पूरे दायरे में फैलती है और पूरी दृश्यात्मकता और अंतर्ध्वनियों को आात्मसात् करती हुई शास्त्रीय, आभिजात्य और सभ्य लोगों की भाषा से कुछ अलग है। गोर्की की तरह उनका विश्वविद्यालय असीम है। उन्होंने गाँव के चौपालों से लेकर पहाड़ियों तक फैली भाषा–संपदा का इस्तेमाल किया है। अपनी कथा–भाषा के सम्बन्ध में संजीव ने कहा है कि – "किसी भी लेखक के सामने भाषा के स्तर पर दो चुनौतियाँ होती हैं। अव्वल तो वह जो कथा कह रहा है, उससे एकमेक हो, दूसरे वह कथा अपनी सम्पूर्ण कला सामर्थ्य के साथ सम्प्रेष्य भी हो। पात्र और परिवेश को उभारने के क्रम में हम पाते हैं कि उसकी बात, उसकी अपनी वाणी निचोड़कर

टपकती है, बूँद की तरह। इसलिए बतौर लेखक मेरी कोशिश रहती है कि मै एकाकार हो सकूँ। इसी एकाकार होने में भाषा या बोली का सवाल आता है। अब यहाँ दूसरी दिक्कत उठ खड़ी होती है। पात्र अपनी–अपनी बोली बोलते हैं अपनी–अपनी जमीन से, और पाठक अपनी–अपनी। यहाँ भाषा को साध पाना कि वह अपनी पहचान, तेवर और ध्वनि भी बनाए रख सके और अबूझ भी न हो पाठकों के लिए यानी अपनी पहचान के साथ संवाद सेतु भी बना रहे, एक टेढ़ी खीर है। मेरी तो सिर्फ कोशिश रहती है कि मूल भाषा का एहसास बना रहे और बोध की पारदर्शिता भी।"

संजीव की कथा–भाषा के सम्बन्ध में जवरीमल्ल पारख ने कहा है कि – "संजीव की कहानियाँ भाषा और रचना–विन्यास के स्तर पर नवीनता और ताजगी का एहसास कराती है।"

संजीव के भाषा विवेक के बारे में जगदीश शर्मा ने कहा है कि – "संजीव मूल्य–विवेक–सम्पन्न, भाव–प्रवणता के साथ वर्ण्य को आकार देते हैं, तो उनकी भाषा रह–रहकर अमिधा से लक्षणा की दिशा में आती जाती रहती हे। उनकी भाषा की लाक्षणिकता कहीं बोध कथाओं की प्रतीकात्मकता में प्रतिबिम्बित संवेदना को धनीभूत कर गई है, तो कहीं–कहीं उसने मिथकों के माध्यम से अभिप्राय की अवगुण्ठनमयी अभिव्यक्ति के रुप में प्रस्तुति को वक्रता प्रदान की है।

संजीव की भाषा के लाक्षणिक प्रयोग के संदर्भ में डॉ. रविभूषण ने लिखा है कि – "संजीव की कथा–भाषा दूर से ही ध्यान खींचती है। वह मुख्यतः अभिधा की भाषा है, पर यहाँ लक्षणा और व्यंजना के भी कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं – "भुईली के पिता के सामने उपने गर्भ को छिपाते हुए जसी बहू कहती है कि उसने खोचे में "अमावट" छिपा रखा है। "अमावट मितई पंडित के बाग का।" बाद में वह अमिधा में उतरती है – "मोर पेट मा सितई पंडित का बच्चा है।"

डॉ. चंदा पाण्डेय के अनुसार – "संजीव ने अनेक नये किन्तु सार्थक प्रयोग भाषा में किए हैं। नितांत आँचलिक शब्दों के साथ अंग्रेजी का प्रयोग प्रवाह में बाधक नहीं। नई जनवादी उपमाएँ नितांत अछूती हैं, जैसे बेतुकी कविताएँ, सूखी मछलियों सी, चीपड़ कहानियों सी, मरे साँपों की झलती झाला के बीच भीगें चूहे सी।"

"संजीव ने यथार्थ रुपों का प्रयोग किया है। संजीव की कथा–भाषा में प्रेमचंद की वृतांतवादी शैली और रेणु की रुपात्मक शैली का सम्मिलित विकास देखा जा सकता हे। प्रेमचंद की भाषा में वाक्यगत संगति अधिक है और रुपात्मक कम, जबकि रेणु मूलतः चित्रणावली का आग्रह रखते हैं।

"ऑपरेशन जोनाकी" में भाषा का रुपात्मक प्रयोग कुछ इस प्रकार है – "माहौल किसी हिंस्त्र गर्भिणी मादा पशु के भारी, मगर चौकन्ने कदमों की आहट सी घड़ी की "टिक–टिक" में पैवस्त हो गया है। अचानक बारह के घहराते गरज के साथ ही टुकड़े–टुकड़े होकर हवा में उछाल खाता हुआ ठीक हमारे सीने पर आ गिरता है।"

मन की भावनाओं को अभिव्यंजित करने हेतु संजीव ने नयी भाषा का प्रयोग किया है –

"परछाइयाँ चू रही हैं, नदी के जल में, कोई नहीं बचा होगा।" चूती हुई परछाइयाँ दृश्य की जड़ता को दर्शाती हैं।

सादृश्य विधान :–

संजीव ने उपमान और बिम्ब चयन के क्षेत्र में कुछ अभिनव प्रयोग किए हैं।

"सूखते तालाब की मछलियों की तरह आज सारा केलूडाँगा सतह पर किलबिला रहा है।" कोलियरियों के निजीकरण के कारण मजदूरों की दीन होती दशा को सूखते तालाब की मछलियों से उपमित किया गया है।

संजीव ने मानव मन के रेशे–रेशे को उघाड़ने वाली सूक्ष्मार्थ जन–भाषा का प्रयोग किया है। उनकी कहानियों में मानसिक यंत्रणा की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

"सुबह–सुबह ही किसी मरदुए कुत्ते के रोने जैसी सायरन की मनहुस आवाज सुरसती के कानों में एक टेढ़ी–मेढ़ी काँपती दरार छोड़ गयी है।" यहाँ सायरन की मनहुस आवाज मनः स्थिति को व्यंजित करती है।

बिम्बों का अर्थपूर्ण प्रयोग –

बिम्बों का सार्थक और नवीन प्रयोग आधुनिक कविता, कहानी, उपन्यासों में बड़ी कुशलता के साथ व्यंजित हुआ है। बिम्बों के द्वारा लेखक यथार्थ की अभिव्यक्ति में अधिक सफल हुआ हैं। कहानीकार की सूक्ष्म संवेदनाओं को कहानी में देखना और दिखाना ही बिम्ब के अन्तर्गत आता है। यह एक सार्थक शिल्प–प्रयोग है। मानव–मन की जटिलताओं को मनुष्य के अन्तर्मन में उठ रहे तमाम मूलभूत प्रशनों का उत्तर इस शिल्प के माध्यम से लेखक देता है और यथार्थ को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार इस शैली ने भावानुभूति में सूक्ष्म ऐन्द्रियता का विस्तार किया है और छिपे आलोक के यथार्थ को उजागर किया है।

संजीव की रचनाओं में बिम्बों का बहुत सशक्त प्रयोग हुआ है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि "काव्य में अर्थ–ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब–ग्रहण अपेक्षित होता है।"

प्रतीक विधान :–

किसी भाव या विचार के लिए स्वीकृत सांकेतिक रुप को प्रतीक कहा जाता है। "प्रतीक" शब्द अंग्रेजी के "सिंबल" का पयार्य है। सांकेतिकता आधुनिक कहानी का मूल है। समकालीन कहानीकारों ने सांकेतिक शैली के माध्यम से अपनी जीवनानुभूति को वाणी प्रदान की है। आज परिवेश में पूर्णतः बदलाव आया है तथा परिवेश के साथ–साथ समय की माँग भी बदली है इस बदली हुई माँग पर नये शिल्प का अभ्युदय भी हुआ है। जिसमें सांकेतिकता का विशेष महत्व है। इन संकेतों का उभार प्रतीक के रुप में होती है। "प्रतीक शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पाठक की पकड़ से यदि कोई प्रतीक रह भी जाये तो भी कहानी के भावबोध अथवा रसास्वदन में किसी प्रकार की बाधा न आये। आज की कहानी को इस प्रतीक शैली ने सार्थकता, कलात्मकता और सांकेतिकता प्रदान की है। अंतस के लक्ष्यहीन यथार्थ को लक्ष्य प्रदान किया है। और बहिर्जगत की लक्ष्योन्मुख वास्तविकता को गहराई प्रदान की है। इस प्रकार प्रतीक शैली द्वारा कहानीकार अपनी संवेदनाओं और अनुभवों से हटकर उन्हें दूसरे की दृष्टि से देखने की सामर्थ्य प्राप्त करता है।"

"जब एक ही अर्थ में अन्योक्ति के रुप में बिम्ब की बार–बार आवृति होने लगती है तब वह बिम्ब उस अर्थ में निश्चित होने लगती है। विशिष्ट अर्थ में चित्रित ऐसा बिम्ब प्रतीक कहलाता है।"

संजीव की अनेक कहानियों/उपन्यासों की भाषा में अर्थ–छवि के विस्तार के लिए प्रतीकों का अत्यन्त प्रभावशाली और सफल प्रयोग हुआ है। संजीव ने जिन प्रतीकों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है, वास्तव में वे प्रतीक न होकर स्वप्न–प्रतीक के रुप में प्रयोग में आये हैं। नायक या नायिका सपनों का जाल बुनते हैं, और उनमें जीवन के यथार्थ को प्रतीक रुप में देखते हैं।

पूर्वाभास :–

संजीव ने "तुक–ताल–लय मात्रा और छंद'' एवं "टीस" में अवांतर घटनाओं के मुख्य कथा को पूर्वाभास के रुप में वर्णित किया है। संजीव की कहानियों में नदी के कई प्रतीकार्थ हैं। "सूखी नदी" में सूखी नदी नायिका की प्रतीक है। जिसका जीवन प्रेम की रस–धारा से वंचित रह गया। उससे मिलने पर नायक को महसूस होता है कि "यहाँ निश्चय ही अकाल मृत्यु हुई होगी, किसी की जिसकी आत्मा मुझे भटका रही है। .....मगर फिर वही दुविधा। किस दिशा में .....?

व्यंगात्मक शिल्प :–

यूँ तो व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा है, फिर भी अनेक कहानियों/उपन्यासों में व्यंग्य का प्रयोग हुआ है। आठवें दशक के कथाकारों ने अपनी कहानियों में जीवन के यथार्थ का निरुपण व्यंग्य के माध्यम से किया है। संजीव भी उनमें से एक हैं। उनकी कथा–भाषा में व्यंग्य की बानगी हम निम्न रुप में देख सकते हैं – "बोलो तो सींच दे हम तुम्हारा खेत।"

मिथक एवं लोक–कथा शैली :–

"मिथक" अंग्रेजी के "मिथ" शब्द का पर्याय है। हिन्दी में "मिथ" के लिए "पुराण–कथा" आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। "सामान्य रुप में मिथक का अर्थ है ऐसी परम्परागत कथा जिसका सम्बन्ध अतिप्राकृत घटनाओं और भावों से होता है। मिथक मूलतः अदिम मानव के समष्टि–मन की सृष्टि है। जिसमें चेतना की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है।"

इस प्रकार मिथक की रचना में यद्यपि कल्पना तत्व का प्राधान्य रहता है, तथापि उसकी प्रतीती सत्य के रुप में ही ज्ञात होती है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी में पुराकथा के माध्यम से जीवन के सत्य को उद्‌घाटित किया जाता है। इस तरह के प्रयोग संजीव की कुछ रचनाओं में देखनें को मिलते हैं।"

आँचलिक भाषा एवं जन–जीवन की अपनी समझ को संजीव बड़ी कुशलता के साथ कहानी के ताने–बाने में बुनते हैं, ताकि अनुभव किसी प्रिज्म के बहुमुखी कोणों एवं आयामों के साथ लगातार पाठक की आँख में चमकता रहे।

लोक–कथा की शैली :–

सातवें, आठवें, नवें दशक के अनेकों साहित्यकारों, स्वयं संजीव ने भी लोक–कथा की शैली में अनेक कहानियों/उपन्यासों की रचना की है। लोक–कथा में लोक तत्व एवं प्रेरणाओं का अपना महत्व होता है।

संजीव अपनी रचनाओं की विषय–वस्तु, अन्तर्वस्तु, पात्र, परिवेश और अंचल विशेष के मिजाज को उकेरने के लिए तरह–तरह के भाषागत प्रयोग करते रहते हैं। एक कथाकार के भाषा प्रयोग के संदर्भ में संजीव की कोशिश सदैव पात्रोनुकूल परिवेश सापेक्ष, विश्वसनीय और जीवंत रही है। संवाद की वाग्मिता को बढ़ाने के लिए उन्होंने विभिन्न अंचलों की बोली–बानी को "कबीर" की भाँति स्वीकार किया है। "अपराध", "लांग साइट", "सागर सीमांत" "ज्वार" आदि कहानियों का परिवेश पश्चिम–बंगाल से, "जसी बहू, "प्रेरणास्त्रोत", "पिशाच" का परिवेश अवध प्रांत से "शिनाख्त", "दुनिया की सबसे हसीन औरत" जौनसार बाबर अंचल से "खोज" बुंदेलखण्ड से जुड़ा है। "जीवन के पार" में "हो" जनजाति के गीतों का ही प्रयोग हुआ है, साथ ही साथ उनकी शब्दावलियों का भी कहानी में प्रयोग किया गया है। मसलन, तोपा (समाधियाँ), उली (आम), डीयांग (भात की शराब), बाना (भालू), गोनोंग (वधू–मूल्य), कुँआ (बेटा), एरा (कुमारी), दिकू (गैर आदिवासी) आदि।

अग्रेजी भाषा का प्रयोग :–

भारत में अंग्रेजी भाषा का क्रेज़ दिनोदिन बढ़ता ही जा रहा है। हर गली, कोने में जहाँ भी देखिए कान्वेंट – कुकुरमुक्तों की तरह बुनियादी स्तर पर करोड़ों शिशुओं–बच्चों की उनकी मातृभाषा छीनकर बाजारवाद की भाषा में शिक्षित–प्रशिक्षित करने का काम छोटे से बड़े स्तर के अंग्रेजी स्कूल कर रहे हैं। आज यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि अंग्रेजी स्कूलों में पढ़कर आये बच्चे एवं अंग्रेजी के मोह–जाल में फँसकर आभिजात्य जन की भाषा क्या है – हिन्दी, अंग्रेजी, या हिंग्रेजी। संजीव की कहानियों में ऐसे अनेक पात्र आए हैं, जो हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी, उर्दू मिश्रित भाषा के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले के साथ करते हैं। ऐसी मिश्रित भाषा संजीव के द्वारा निर्मित नहीं है, वरन् एक खास वर्ग ने ऐसी भाषा विकसित की है। जिसे कथाकार को भाषा की पात्रोनुकूलता के कारण प्रयोग करना पड़ता है। नगरों, महानगरों, के आभिजात्य और मध्य वर्ग के साथ–साथ झुग्गी बस्तियों में बसने वाले सर्वहारा के द्वारा बोली जाने वाली भाषा से संजीव बखूबी वाकिफ हैं। यही कारण है कि उनका यह अनुभव उनकी रचनाओं और पात्रों के द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा में भी झलकता है। "ब्लैक–हॉल" में आधुनिकता का ढ़ोंग करने वाली मध्यवर्ग की अलका अर्जुन के लक्ष्य–भेदन के दृष्टान्त को अपने बेटे अंकुर के सामने रखकर न सिर्फ उसका भविष्य चौपट करती है, बल्कि उसकी मौत का कारण भी बनती है।"

कारखाना, कोलियरियों में प्रचलित मिश्रित भाषा :–

कारखाना, कोलियरियों में काम करने वाले मजदूर रोजी–रोटी के लिए देश के भिन्न–भिन्न अंचलों से जुड़े रहते हैं। उनके बीच वार्तालाप का माध्यम भाषा ही है, जिसके कारण संक्रमित–भाषा का निर्माण होता है। "प्रेत–मुक्ति", "धनुषटंकार", कन्फेशन", "जब–नशा फटता है" आदि कहानियों में इस तरह की संक्रमित–भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है।

संजीव की कथा, भाषा में गालियों का प्रयोग :–

समकालीन कथाकार, समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित करता है। अतः उसे उसी भाषा का प्रयोग रचना में करना पड़ता है, जो रचना के पात्रों को जीवंतता प्रदान करे। इसलिए वह बेधड़क गालियों (अपशब्दों) का प्रयोग करने से परहेज नहीं करता है। यह उसकी कमजोरी नहीं बल्कि समकालीन कथा–साहित्य की माँग है। रेणु, काशीनाथ सिंह, इस्त्रायल, कृष्णा सोबती, शेखर जोशी इत्यादि कई कथाकारों ने जन भाषा का प्रयोग करते हुए उनमें गालियों का भी मिश्रण किया है। संजीव की कथा–भाषा में भी पात्रों के सामाजिक स्तर के अनुरुप गालियों का प्रयोग हुआ है। गालियाँ समाज–शास्त्रीय अध्ययन का आधार होती है। व्यक्ति की वर्गीय स्थिति और स्तर के अनुरुप भी गालियों के प्रयोग में भिन्नता पायी जाती है। "दुश्मन", "प्रेरणास्त्रोत", "पिशाच", ''कुछ तो होना चाहिए'', इत्यादि कहानियों में संजीव ने गालियों का प्रयोग पात्रों को जीवंतता प्रदान करने के लिए किया है।

पात्रोनुकूल भाषा संजीव की कहानियों की विशेषता है। संजीव के पात्र जब अपने परिवेश के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं, तो उनकी शब्दावली और मुहावरे–कहावतें भी बदल जाते हैं। संजीव की कथा–भाषा में "बोलते गए" जैसे क्रिया–पद का प्रयोग लेखक चतुष्टय की हिन्दी का स्मरण कराता है।

संजीव की कथा–भाषा में गीत–संगीत का प्रयोग :–

भारतीय संस्कृति में जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त विभिन्न संस्कारों में विभन्न त्योहारों में एवं कृषि से जुड़े विभिन्न क्रिया–कलापों में गायन की एक समृद्ध एवं सुदीर्घ परम्परा रही है। हिन्दी में विद्यापति से लेकर भिखारी ठाकुर, महेन्द्र मिसिर एवं हिन्दी प्रदेशों के अन्य बोलियों के अनेक रचनाकारों के गीतों में लोक–जीवन की झाँकी दिखती है। भारतीय लोक–कथाओं, आख्यानों में भी जीवन के मार्मिक एवं कारुणिक पक्ष के उद्‌घाटन के लिए लोकगीतों का समायोजन होता रहा है। लोक–गीतों की उपेक्षा करके लोक–जीवन को इनकी सम्पूर्णता में न तो समझा जा सकता है, और न ही चित्रित किया जा सकता है। लोक–संस्कृति के चितेरे रेणु की रचनाएँ लोकगीत, संगीत एवं नृत्य की अन्तर्ध्वनियों के सकल समायोजन के कारण लोक–जीवन का ओडियो एवं वीडियो एलबम बन गई है। संजीव की कहानियों में जो लोकगीत इस प्रकार अन्तर्विन्यस्त हैं कि इससे न केवल लोक–जीवन अपनी संपूर्णता में चित्रित हुआ है, बल्कि कथा का परिवेश जीवंत और विश्वसनीय हो रहा है।

"टीस" में आदिवासी जनजाति के गीत, नृत्य का दृश्य है – स्त्रियाँ गाती हैं –

"खिली कीझरी, यहीं तो जिंदगी मिली है।
इतनी प्रीति अच्छी नहीं है– तम्हें मैं समझाये देती हूँ।
प्रीति–प्रीति करके बावरे न बनो। यह तो नागफनी की सेज है।
टीस–टीस कर मरोगे।"

"आप यहाँ है" में–

"स्वरगराज केतिक सुंदर हमार लगिन,
सोना से सिगर लै, रुपा सजावारले,
भूख नखे, पियास नरवे, ओही रे`
जोर नरवे, जुलुस नरवे, लड़ाई नरवे, झगड़ो नरवे।"

कथा की पृष्ठभूमि के सृजन के लिए संजीव ने प्रकृति के विभिन्न रुपों और काल के विभिन्न प्रहरों का चित्रण किया है। प्रकृतिक दृश्यों का चित्रण भी कथानक की प्रवृत्ति के अनुरुप हुआ है।

शिल्प संरचना :–

हर कहानी या उपन्यास की प्रस्तुति की अपनी एक भंगिमा या शैली होती है। शिल्प कथा की वस्तु के साथ इतने संश्लिष्ट रुप में अन्तर्विन्यस्त रहता है कि उसे विलग करके नहीं देखा जा सकता है। कथा–वस्तु के अनुरुप कथाकार को एक नया शिल्प गढ़ना पड़ता है। इस सम्बन्ध में सुरेन्द्र चौधरी लिखते हैं कि – "किसी भी साहित्य रुप की प्रचलित जमीन को नया शिल्प नहीं तोड़ता है, तोड़ने को हौंस में वह आरोपित जरुर होने लगता है। उस जमीन को तोड़ती है– "नयी वस्तु।" वस्तु को कहे जाने की विवशता से गुजरना ही रचनाकार का शिल्प दायरे में चले आना है, और वस्तु को जिस कोण से वह उठाता है, वही उसका शिल्प कोण भी होता है।"

डॉ. पुष्पपाल सिंह ने कहानी के आधुनिकतापूर्ण प्रयोगों को निम्नलिखित रुप में विश्लेषित किया है। कहानी के परम्परागत ढ़ाँचे का अस्वीकार, कहानी के रुपबंध के कुछ प्रयोग में देखे जा सकते हैं :–

1. कहानी/उपन्यास का शीर्षक।
2. कहानी/उपन्यास प्रारम्भ और अंत।
3. पात्रों का नामकरण।
4. कहानी शिल्प में अन्य गद्य विधाओं की अंतर्मुक्ति।
5. कहानी और उपन्यास में व्यग्यं/विद्यागत प्रश्न।
6. पुरातन कथा–शैलियों का प्रयोग।
7. कई कथा–खण्डों की कहानी।
8. कहानी प्रस्तुति विभिन्न शैलियाँ।
9. समानान्तर कथा–शिल्प।
10. समानन्तर राजनीतिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में पात्र अथवा घटना स्थितियाँ।
11. घटनाओं अथवा कथा की पुनरावृत्ति से मन की विवृत्ति, स्वप्न–प्रतीक, फंतासी–शिल्प, कहानी में आकारगत प्रयोग।

संजीव की कहानियाँ भिन्न–भिन्न शिल्पों की नजीर है। जब जहाँ प्रविधि की जरुरत महसूस हुई उसे अपनाने में कथाकार ने कोई गुरेज नहीं किया है। मसलन "अपराध" की चेतना–प्रवाह की एक विशेष शैली है, तो "सागर–सीमांत", "खिंचाव", "जीवन के पार" आदि में बिल्कुल लोक–कथा की महाकाव्यात्मक शैली, "संतुलन" की इंटरव्यू शैली है तो "मानपत्र" में पत्र–लेखन शैली, "घर लौट चलो दुलारी बाई" में संबोधन शैली है और "दास्तान–ए–चमन" में किस्सा–ए–हातिमताई की शैली। "ब्लैक हॉल", "कन्फेशन", "अंतराल", "लॉग–साइट", "मुर्दगाह", "कदर" इत्यादि कहानियों में संवाद–शैली, "अपराध", "खिंचाव", "मानपत्र", "भूमिका", "लिटरेचर", "मक्तल", "हलफनामा" इत्यादि कहानियों में "मैं" शैली के संस्मरणात्मक रुप, "सागर सीमांत", "निष्क्रमण", "फैसला" कहानियों में प्रकृति का मानवीकरण, "माँद", "लिटरेचर", "महामारी", "पूत पूंत! पूत. पूत" कहानियों में पूर्वदीप्ती शैली इत्यादि देखने को मिलता है।

संजीव कथानक के अनुरुप अपनी कहानियों का अंत अक्सर गीत, कविता, वक्तव्य, या प्रकृति वर्णन से करते हैं। कहीं–कहीं अंत में नाटकीयता का भी समावेश है। जैसे – "उष्मा" के अंत में संजीव लिखते हैं – "दोस्तों, छबीली और बरसाती की कहानी अभी शुरु ही हुई है – जैसे तेज और धानी, जैसे आग और पानी, जैसे प्रेम और जिंदगानी"। "फैसला" का अंत (रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता की पंक्तियों से होता है।)

"लिटरेचर", "पूत–पूत ! पूत–पूत" में नाटकीय अंत देखा जा सकता है– "मैले का ब्रह्माण्ड मेरे उपर था और मैं उसके नीचे पीठ के बल हाथ–पाँव से छटपटाता हुआ।"

कथा–रुपक :–

संजीव की कहानियों में कथा–रुपक का प्रयोग समानान्तर कथा के रुप में हुआ है, जो मुख्य कथा को समृद्ध करने में सहायक सिद्ध हुआ है। मसलन "पूत–पूत ! पूत–पूत" के पात्र मनखूँचा मरखूल पक्षी की कथा के माध्यम से समाज की मूर्खतापूर्ण कार्रवाई को स्पष्ट करता है – "एक बार महखुल ने महुआ बीनाां फिर उसे तौलकर बेटे की रखवाली पर सूखने के लिए फैलाकर चली गयी। लौटकर आयी तो क्या देखती है कि बेटा तो रखवाली कर रहा है, लेकिन महुआ कम लग रहा है। संदेह हुआ तो बटोरकर तौलकर देखा। हाँ, कम तो है। उसे बेटे के ईमान पर शक हुआ, उसने उसे मार डाला।"

कहानी कह चुकने के बाद मनखूचा ने बहुत आर्त स्वर में कहा, "यह समाज ही वह महखूल है बाचा। और जिनकी हत्या हो रही है वे इसके पूत हतियारों को चाहिए कि वे मारे गए लोगों की जगह खुद को रखकर एक बार विचार कर लें कि सारा भरम मिट जाए।"

"आरोहण" में भूपसिंह अपने भाई रुपसिंह को नन्हीं चिड़िया और गीत की कहानी सुनाते हैं – "वे एक नन्हीं – जोर नखे, जुलुम नखे, लड़ाई नखे, झगड़ो नखे`"

इस गीत में एक शोषण विहीन समाज की परिकल्पना हैं। गीत के द्वारा हिंदिया के मन की निर्मलता एवं उसकी आशावादी दृष्टि सांकेतित होती है। "सागर–सीमांत" में नसीबन मुर्शिदाबाद वाली नसीबन, कोओडारवाली वाणी करीम गुनगुनाती है –

"गंगा – सागर तरंगे प्राण–पद्म भाषाइलॉम रे
मागो राखिओं जतने बुके निया
मागो दुलाओं आशार देउ दिया रे–रे
हे– हे – हे।"

माँ गंगे, तुम्हारी लहरों पर मैंने अपने प्राण का कमल तैरा दिया है। इसे जतन से सीने से लगाए रखना, माँ इसे आशा की लहरों से झुलाती रहना .....।"

बग्ंला भाषा के गीत के इस अंश से सागर अंचल की भाषा–संस्कृति एवं वहाँ के लोगों की आस्था का परिचय तो मिलता ही है। इसके अलावा सागर में गये पति के प्रति पत्नी की प्रेमानुभूति भी व्यंजित होती है।

"महामारी" में शीतला माई के बिहार और उत्तर–प्रदेश में बहुप्रचलित गीत का प्रयोग किया गया है। "निमिया की डारी देवी डार यीं हिंडोलवा कि झूलि–झूलि ना।"

"खोज" में कथा कार ने प्रकृति के अनुरुप स्वरचित बीजक के पदों का उपयोग किया है। जो कथा को तिलस्मी बनाता है एवं प्राचीन कथा–शैली का स्मरण कराता है–

"चन्द्रकला चपला जहाँ सोवति,
सिद्धि औ सिद्धि के थाल सजा है,
जोड़े मिले अहरा–पहरा,
न जुड़े तुझ लाल को काल घना है।"

"मक्तल" में संतू दा जो अपने जमाने में फिल्म क्रिटिक भी रहे हैं। कथावाचक के साथ अपनी पसंदीदा फिल्म चैप्लिन की हिटलर देखने के लिए जाते हैं और हॉल में आदि से अंत तक अपने खो गए एक रुपये के नोट को ढूँढ़ने में व्यस्त रहते हैं। कथावाचक के प्रति संतू दा के अपराध बोध को संजीव ने फंतासी के द्वारा बखूबी दर्शाया है।

संदर्भ–

1 उपन्यास, स्वरुप, संरचना तथा शिल्प, डॉ. शांतिस्वरुप गुप्त – पृ. 118–119
2 हिन्दी कहानी, बदलते प्रतिमान, डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय – पृ. 216
3 नयी कहानी, प्रकृति और पाठ – सुरेन्द्र, पृ. 76
4 समकालीन कहानी की पहचान – नरेन्द्र मोहन, पृ. 15
5 समकालीन कहानी में नारी के विविध रुप – डॉ. घनश्याम दास भूतड़ा, पृ. 167
6 साक्षात्कार, कल के लिए, अप्रैल–जून, 1999
7 मध्यवगीर्य मानसिकता से मुक्त होती कहानियाँ, पहल से उद्धृत एवं चर्चा पत्रिका, अंक–9 से संकलित।
8 यथार्थ बोध की मॉसल कहानियाँ, चर्चा पत्रिका, अंक–9
9 यथार्थ– रचनात्मक कैमरे की पकड़ में वागर्थ, जनवरी, 1998
10 यथार्थ की दृष्टि और कथा–भाषा, मधुमती, सितम्बर–1985, नंद किशोर आचार्य।
11 'खोज– कथा–संग्रह ➔ संजीव, पृ. 147,38,46,117
12 "ब्लैक–हॉल ➔ संजीव
13 "मै और मेरा समय", कथादेश, जून–1999, संजीव
14 "तीस साल का सफरनामा" – संजीव
15 काव्य–भाषा और बिम्ब, नंद किशोर, नवल, हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना, पृ. – 280
16 "प्रेरणास्त्रोत और अन्य कहानियाँ" ➔ संजीव
17 हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान – रघुवर दयाल वार्ष्णेय, पृ – 215
18 "आप यहाँ हैं" ➔ संजीव
19 "भूमिका तथा अन्य कहानियाँ" ➔ संजीव
20 "दनिया की सबसे हसीन औरत" ➔ संजीव
21 डॉ. रविभूषण, पहल, कथा–संग्रह, दो फरवरी 2000
22 नई कहानी – प्रकृति और पाठ, सुरेन्द्र चौधरी, पृ. – 84
23 समकालीन कहानी, युगबोध का संदर्भ, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ. – 291
24 गगनाचंल, अक्टूबर–दिसम्बर – 1999